शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2014

सम्पादकीय

सभ्य समाज के सामने चुनौती

डॉ. पुष्पेंद्र दुबे

वैज्ञानिक युग में हिंसा आधारित समाज व्यवस्था का मजबूत होना पूरी मनुष्य जाति के लिए चिंता का विषय है। हिंसा के विस्तार का मुख्य कारण प्रकृति से दूर जाना है। प्रकृति जितनी सहज, सरल और अकृत्रिम है, मनुष्य उतना ही जटिल बन गया है। आज मनुष्य अपने मूल स्वभाव सत्य, प्रेम, करुणा, दया, धृति, मति, स्मृति आदि को भूल गया है। इन सब पर उसका स्वार्थ सर्वोपरि हो गया है। विज्ञान के युग में स्वार्थ चलेगा ही नहीं। आज कोई परिवार, कोई समाज, कोई प्रांत, कोई देश यह समझे कि अन्यान्य जीयें या मरें, परंतु उनके सुखों में लेशमात्र भी कमी नहीं आना चाहिए। इस विचार से हिंसा का जन्म होगा ही। आज सभी दूर हिंसा का जो तांडव दिखाई दे रहा है, उसके मूल में मनुष्य की स्वार्थ वृत्ति काम कर रही है। इस स्वार्थ की पैदाइश लोभ से हुई है। समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार से लेकर बड़े-बड़े राष्ट्र तक लोभ के वशीभूत होकर विकास की ऐसी योजनाएं बना रहे हैं, जिससे एक तरफ समृद्धि के पहाड़ खड़े हो रहे हैं, तो दूसरी तरफ गरीबी की खाई बढ़ती जा रही है। इस विषमता को मिटाने में विज्ञान सक्षम है, परंतु वैज्ञानिक सोच के अभाव ने इस पर बंधन लगा रखा है। विज्ञान के अधुनातन साधन केंद्रीयकृत व्यवस्था को दृढ़ता प्रदान कर रहे हैं। हर कोई जीवन की मूलभूत सुविधाएं अपने अधिकार में कर लेना चाहता है। उसकी बढ़ती अधिकार लिप्सा से मनुष्य जाति ही त्रस्त और पीड़ित नहीं है, बल्कि समूची प्रकृति कराह रही है। इस पीड़ा से हिंसा उपज रही है। इसे रोकने के लिए प्रतिहिंसा का सहारा लिया जा रहा है। हिंसा के पक्ष-विपक्ष खड़े करके उसे जायज-नाजायज ठहराया जा रहा है। सरकारें व्यवस्था बनाए रखने के लिए हिंसा को जायज ठहरा रही हैं, और दूसरी तरफ व्यवस्था बदलने को तैयार बैठे लोग हिंसक तरीकों को जायज बता रहे हैं। समाज में यह भाव भी दृढ़ है कि हिंसा और क्रांति का चोली-दामन का साथ है। यदि क्रांति होगी तो हिंसा होगी ही। समाज से अहिंसक क्रांति की अवधारणा लुप्त हो चुकी है। आज यदि सरकारी हिंसा को जनसमर्थन हासिल है तो नक्सली हिंसा के समर्थक भी बहुत हैं। इससे देश में हिंसक संघर्ष की स्थिति पैदा होती जा रही है। सरकार दो देशों के बीच संबंधों को सुधारने के लिए वार्ता के दरवाजे खुले रखती है, परंतु अपने ही देश के लोगों के साथ संवाद करने में परहेज करती है। देश में व्याप्त हिंसा संवादहीनता का परिणाम है। आज देश में ऐसा कोई न्यूट्रल फोर्स मौजूद नहीं है जो आपस में संवाद कायम करने में मदद कर सके।

यदि इस देश के ग्रामीण चाहते हैं कि उनके जल, जंगल, जमीन, प्राकृतिक संसाधनों पर उनका अधिकार बना रहे। वे अपने तरीके से प्राकृतिक जीवन जीना चाहते हैं, तो उसमें किसी को क्या परेशानी होना चाहिए। उनके पास उपलब्ध

संसाधनों को वे रुपये-पैसे में नहीं बदलना चाहते हैं, तो इसमें क्या बुराई है ? वे शिक्षित तो होना चाहते हैं, पर छल-कपट नहीं सीखना चाहते, तो इसे मान क्यों नहीं लिया जाता। जिन बड़े उद्योगों को विकास का पैमाना माना जा रहा है, यदि ग्रामीणों को यह पैमाना मंजूर नहीं है तो फिर क्यों जिद की जा रही है ? लेकिन दूसरी ओर यह भी सच है कि जिन हाथों में बंदूकें रहती हैं, वे हाथ नयी समाज रचना कभी नहीं कर सकते। हिंसा में भरोसा करने वालों को यह बात समझना होगी कि यदि वे आईने के सामने अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़े होंगे तो प्रतिबिंब के हाथों में फूलों का गुलदस्ता नहीं होगा। नक्सलियों के मस्तिष्क में जब तक हिंसा से समाज परिवर्तन का विचार दृढ़ रहेगा और सरकारें जब तक मानती रहेंगी कि हिंसा को हिंसा से ही समाप्त किया जा सकता है, तब तक हिंसा ग्रस्त क्षेत्र में शांति कायम नहीं हो सकती। एक ओर सरकार को अपनी अधिकार लिप्सा का त्याग करना होगा और दूसरी ओर नक्सलियों को अपनी बंदूकें छोड़ना होंगी।

सवाल यही है कि आज देश में ऐसा कौन-सा व्यक्तित्व है जो इस महान् कार्य को करने में सक्षम है। संत विनोबा और लोकनायक जयप्रकाश नारायण ऐसे व्यक्तित्व थे, जिनके नेतृत्व में जमीन का मसला हल करने के लिए भूदान-ग्रामदान आंदोलन चलाया गया और जिनके चरणों में चंबल के डाकुओं ने अपनी बंदूकें समर्पित की थीं। लोगों ने भावना के वशीभूत होकर अपनी जान से ज्यादा प्यारी जमीन दान में दी थी। जमीन के लिए हुआ महाभारत इतिहास के पन्नों में दर्ज है।

भूदान आंदोलन के मूल में भी नक्सली हिंसा थी। विनोबा जी स्वयं नक्सलियों से मिलने जेल में गए और उनके साथ बातचीत की। इसके अगले कदम के रूप में नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में तैनात सेना और पुलिसकर्मियों के हाथों में उत्पादन का सबसे छोटा साधन चरखा देने का प्रयोग किया जाना चाहिए। चरखे में प्रेम, शांति, सद्भाव स्थापित करने की अपार शक्ति मौजूद है। चरखा हमारी सभी प्रकार की गुलामी को तोड़ने वाला है, ऐसा विश्वास लोगों में पैदा होना चाहिए। जब हम चरखे से अंग्रेजी साम्राज्य को हिला सकते हैं, उनकी गुलामी से आजाद हो सकते हैं, तो हमारे मनों में बैठी और समाज में विस्तार पाती हिंसा से आजाद क्यों नहीं हो सकते ?

मनुष्य जाति को वैज्ञानिक साधन तभी सहायता कर पाएंगे, जब मनुष्य अहिंसक समाज रचना की दिशा में काम करेगा। अहिंसक समाज रचना के लिए किया जाने वाला प्रत्येक प्रयास क्रांति की श्रेणी में आता है। इसमें मिलने वाली असफलता भी सफलता से कम नहीं है। सरकार को हिंसा से विरत करने और नक्सलियों के हृदय परिवर्तन की चुनौती 'सभ्य समाज' के सामने है। इसीमें रचनात्मक शक्ति के उत्थान की संभावनाएं मौजूद हैं। वही समाज सभ्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है जो कम-से-कम वस्तुओं का उपभोग करता है।